खरतरगच्छ की भारतीय संस्कृति को देन

[लेखक – रिषभदास रांका]

भारत में जैन मन्दिरों की व्यवस्था और स्वच्छता बहुत अच्छी समझी जाती है क्योंकि जैन मन्दिर की व्यवस्था किसी ऐसे सन्त-महन्त के हाथ में नहीं होती जिसमें उनका स्वार्थ या सत्ता जुड़ी हो। जिन धर्म या सम्प्रदायों में मन्दिर या मठों की व्यवस्था सन्त-महन्तों की होती है वहाँ क्या होता है इसके किस्से अखबारों में छपते हैं और उनमें चलनेवाले दुराचार या विलासिता की कहानियाँ पढ़ने या देखने को मिलती हैं। कई इतिहासज्ञों का कहना है कि बौद्धों का इस देश से निष्काल या प्रभाव कम होने के कारणों में राजाओं की कृपा तथा विहारों की विलासिता और दुराचार भी एक कारण था। बौद्धों की तरह जैनियों में यह विकृति न आई हो ऐसी बात नहीं। ८वीं शताब्दी में वे भी पतन की ओर तेजी से बढ़ रहे थे। आचार्य हरिभद्रसूरि ने लिखा है कि "कई जैन साधु मन्दिरों में रहने लग गये थे, मन्दिरों के धन का अपने भोग-विलास में उपयोग करते, मिष्टान्न तांबूलादि से जिह्वा को तृप्त करते, नृत्य संगीत का आनन्द लूटते। केश-लुँचन का त्याग कर दिया था। स्त्री-संग को वे सर्वथा त्याज्य नहीं मानते, धनिकों का आदर करते और ऐसी बहुत सी बातें जो जैनाचार के विपरीत थीं उसे करने लग गये थे। धनिकों तथा राजाओं पर उनका अत्यन्त प्रभाव था उसका उपयोग वे अपना सम्मान बढ़ाने तथा सुखोपभोग में करते। हाथियों पर सवारी और छत्र-चामर आदि द्वारा राजाओं की तरह उनका मान-सम्मान होता था।

श्री हरिभद्राचार्य जैसे प्रतापी तथा प्रभावशाली आचार्य ने इस स्थिति को सुधारने का प्रयत्न किया, कुछ सफलता भी प्राप्त हुई, उनके बाद भी वह संघर्ष चलता रहा। उस काल में चैत्यवासियों का बहुत प्रभाव था। जो चावड़ा तथा चौलुक्य वंश के गुरु थे। जैन धर्म को पतन के गर्त से बचाने तथा प्राचीन श्रमण परम्परा और आचार की प्रतिष्ठापना करने का काम प्रभावशाली ढंग से जिन महापुरुष ने किया, जिन्होंने 'खरतरगच्छ' की पदवी प्राप्त कर खरतरगच्छ की परम्परा चल ई। वे थे श्रीजिनेश्वरसूरि और उनकी परम्परा के आचार्य जिनवल्लभ, जिनदत्तसूरि, जिनचन्द्रसूरि, जिनपतिसूरि आदि। इन्होंने चैत्यवास का विरोध एवं पुनः कठोर जैन श्रमण आचार की प्रतिष्ठापना की। जैन श्रमण संस्था को विशुद्ध संयमयुक्त तथा तेजस्वी बनाने का प्रयास किया। विशुद्धि से समाज में आई हुई चैत्यवास की विकृति को दूर करने के प्रबल प्रयास किये।

खरतरगच्छ ने जो जैन संस्कृति की सेवा की है उसका ठीक मूल्यांकन जैन समाज में भी नहीं हो पाया। कारण अनेक हैं उसमें से एक कारण गच्छ और सम्प्रदाय का अभिनिवेश है। जब सम्प्रदाय या गच्छों में विचारों की भिन्नता रहते हुऐ भी एक दूसरे के गुणों और विशेषताओं से लाभ उठाया जाता है तब ये गच्छ अथवा सम्प्रदाय एक दूसरे के लिये लाभदायक होते हैं पर इसके स्थान में उनमें जब प्रतिस्पर्धा या ईर्ष्या का भाव निर्माण होता है तब एक दूसरे से लाभ लेना तो दूर, वे एक दूसरे की हानि पहुँचाने में भी कसर नहीं छोड़ते। इस साम्प्रदायिक अभिनिवेश ने जैन समाज को बहुत हानि पहुँचाई है। हम न तो अपना निष्पक्ष और ठीक इतिहास ही लिख पाये हैं, न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐतिहासिक भूलों से शिक्षा ही ले सके हैं और न पूर्वजों की विशेषताओं से लाभ ही उठा सके हैं।

खरतरगच्छ की स्थापना के समय के भारत के इतिहास का गहराई से अध्ययन होना आवश्यक है। वह समय भारत के इतिहास में इसलिये महत्वपूर्ण है कि उस समय भारत में आपसी झगड़े और द्वेष बढ़कर छोटे-छोटे राजा अपने अहंकार के प्रदर्शन के लिये एक दूसरे का नाश करने पर तुले हुए थे। जब देश में धर्म रूढ़िगत आचार बन जाता है, और उसे साम्प्रदायिक लोग महत्व देकर चरित्र-धर्म एवं नैतिकता को भूल जाते हैं तब प्रजा अनैतिक बनती है, उसमें दुर्बलता आती है। धर्म के ऊँचे सिद्धान्तों की पूजा तो होती है लेकिन वे जीवन से लुप्त हो जाते हैं। मनुष्य स्वार्थी बनकर धर्म का उपयोग भौतिक सुख प्राप्ति में करने लगता है। उसके गुण या विशेषतायें दुर्गुण बन जाती हैं। साधु-सन्तों की विद्या, शक्ति, साधना विकृत बनती है। राजाओं का शौर्य व शक्ति भी आत्मनाश का कारण बनती है। वे समाज और राष्ट्र को दुर्बल बनाते हैं। इसलिये ऐसे समय में राष्ट्र के चरित्र निर्माण का प्रश्न महत्वपूर्ण बन गया था। यदि राष्ट्र में फिर से नैतिकता प्रतिष्ठित नहीं होती और हम उदार तथा व्यापक दृष्टिकोण नहीं अपनाते तो राष्ट्र को विदेशियों के आक्रमण से बचा नहीं पावेंगे, ऐसी दृष्टिवाले जो कुछ दीर्घ-द्रष्टा थे उनमें से खरतरगच्छ की स्थापना करने वाले आचार्य वर्द्धमानसूरि थे। जिन्होंने संयम धर्म को अपना कर उसका प्रचार करने का प्रबल प्रयत्न किया और चैत्यवासियों को संयम और विहित धर्मपालन की तरफ आकृष्ट करने लगे।

प्रारम्भ में यह काम बहुत कठिन था। क्योंकि चैत्यवासियों के पास साधन और सत्ता का बल था। और श्रमण संस्कृति को विशुद्ध और तेजस्वी बनाने वालों के पास तो आध्यात्मिक त्याग और सहन की शक्ति के सिवाय भौतिक साधन थे ही नहीं, पर आहिस्ता-आहिस्ता परिस्थिति बदली और उनके प्रबल प्रयत्नों का यह परिणाम आया कि जैन-मन्दिर चैत्यवासियों के प्रभाव से मुक्त हुए। इतना ही नहीं, मन्दिरों का द्रव्य, देव-द्रव्य समझा जाकर उसका उपयोग मन्दिरों की व्यवस्था, सुरक्षा और पुनर्निर्माण में ही होने लगा। फलस्वरूप जैन मन्दिरों की सुव्यवस्था हो सकी, वे सुरक्षित रह सके। आज हमारी प्राचीन वास्तुकला को जिस रूप में हम देखते हैं उसका कारण चैत्यवासियों के प्रभाव से जैन मन्दिरों को मुक्त कराना है और इस महान कार्य को खरतरगच्छ के आचार्यों ने कर जैनधर्म और भारतीय संस्कृति की बहुत बड़ी सेवा की।

मंदिरों, मठों, विहारों को चरित्रहीन व्यक्तियों के प्रभाव से बचाने का काम कितना महत्वपूर्ण था यह जब हम अन्य सम्प्रदाय के उपासना-स्थलों व मंदिरों की बातें सुनते हैं तब पता चलता है। हंसा दामोदरलालजी के विवाह जैसी अनेक घटनाएं घटती हैं। मंदिरों का करोड़ों रुपया जब इन धर्मगुरुओं के भोग-विलास या बड़प्पन के दिखावे में खर्च होता है तब धर्मस्थान धर्म-साधना के नहीं पर भ्रष्टाचार के स्थान बन जाते हैं।

खरतरगच्छ के इस कार्य ने जैन साधुओं को फिर से संयमधर्म की ओर मोड़ा और जैनधर्म को बौद्धधर्म की तरह भारत से लुप्त होने से बचाया। इतना ही नहीं, जैन समाज की एक और बहुत बड़ी सेवा ओसवाल जाति को प्रतिबोध देकर उन्हें जैनधर्म में दीक्षित करके की थी। उस ओसवाल जाति ने जैन समाज की ही नहीं, भारत तथा भारतीय संस्कृति के विविध क्षेत्रों में जो सेवा की उस विषय में प्रसिद्ध इतिहासज्ञ मुनि जिनविजयजी ने जो कहा वह यहां देने जैसा है :—

'श्वेताम्बर जैन संघ जिस स्वरूप में आज विद्यमान है, उस स्वरूप के निर्माण में खरतरगच्छ के आचार्य, यति, और श्रावक समूह का बहुत बड़ा हिस्सा है। एक तपा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गच्छ को छोड़कर दूसरा और कोई गच्छ इसके गौरव की बराबरी नहीं कर सकता। कई बातों में तो तपागच्छ से भी इस गच्छ का प्रभाव विशेष गौरवान्वित है। भारत के प्राचीन गौरव को अक्षुण्ण रखने वाली राजपूताने की वीरभूमि का पिछले एक हजार वर्ष का इतिहास, ओसवाल जाति के शौर्य, औदार्य, बुद्धि-चातुर्य और वाणिज्य व्यवसाय-कौशल आदि महद् गुणों से प्रदीप्त है और उन गुणों का जो विकास इस जाति में इस प्रकार हुआ है वह मुख्यतया खरतरगच्छ के प्रभावान्वित मूल पुरुषों के सदुपदेश तथा शुभाशीर्वाद का फल है। इसलिए खरतरगच्छ का उज्ज्वल इतिहास यह केवल जैनसंघ के इतिहास का ही एक महत्वपूर्ण प्रकरण नहीं है, बल्कि समग्र राजपूताने के इतिहास का एक विशिष्ट प्रकरण है।"

भारतीय संस्कृति और इतिहास में खरतरगच्छ के आचार्यों ने महत्वपूर्ण काम किया, उसका महत्व खरतरगच्छ और ओसवाल समाज के लिए तो और भी अधिक हो जाता है। ओसवाल समाज को जैनधर्म में दीक्षित कर उच्च परम्परा की देन दी है, इसलिए ओसवाल समाज का इस परम्परा के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना स्वाभाविक है और वैसा ओसवाल समाज ने किया भी है। उनको प्रतिबोध देनेवाले दादा जिनदत्तसूरिजी की स्मृति ताजा रहे, इसलिए दादावाड़ियों का जगह-जगह निर्माण किया है। एक तरह से ये दादावाड़ियाँ समाज के मिलन का स्थान और दादा जिनदत्तसूरिजी के प्रति कृतज्ञता के सुन्दर प्रतीक हैं। जहाँ उनके चरणों की स्थापना कर पूजा की जाती है। उनके गुणों और कार्यों को याद की जाती है।

लोगों में मान्यता है कि उन्होंने केवल अपने जीवनकाल में ही कल्याण नहीं किया था पर वे आज भी उनके भक्तों के संकट दूर करते हैं। चूंकि हम किसी महापुरुष की पूजा, भक्ति कामना-भाव से करना जैन तत्वों की दृष्टि से प्रतिकूल मानते हैं इसलिए इस बात को हम उत्तेजन देना उचित नहीं समझते किन्तु उनके गुणों से लाभ उठाकर पुरुषार्थ युक्त परिश्रम को अधिक महत्व देते हैं, वही आत्मविकास की दृष्टि से श्रेयस्कर भी है। उस दृष्टि से खरतरगच्छ के महान आचार्यों ने जो कार्य किया उसका महत्व इतना अधिक है कि जैन समाज ही नहीं पर भारतीय संस्कृति के उपासक उनके कार्यों का ठीक मूल्यांकन करे। वैसा सम्यक् मूल्यांकन तभी हो सकेगा जब हम उनके द्वारा लिखे गये साहित्य का गहराई से अनुशीलन व अध्ययन करेंगे। इस विषय में भी मुनिजिनविजयजी के शब्द उद्धृत किये बिना नहीं रहा जाता, मुनिजी कहते हैं :—

"खरतरगच्छ में अनेक बड़े-बड़े प्रभावशाली आचार्य, बड़े-बड़े विद्यानिधि उपाध्याय, बड़े-बड़े प्रतिभाशाली पंडित मुनि और बड़े-बड़े मांत्रिक, तांत्रिक, ज्योतिर्विद, वैद्यक विशारद आदि कर्मठ यति-जन हुए जिन्होंने अपने समाज की उन्नति, प्रगति और प्रतिष्ठा बढ़ाने में बड़ा योग दिया है। सामाजिक और साम्प्रदायिक उत्कर्ष के सिवा खरतरगच्छ के अनुयायियों ने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं देशी भाषा के साहित्य को भी समृद्ध करने में असाधारण उद्यम किया और इसके फलस्वरूप आज हमें भाषा, साहित्य, इतिहास, दर्शन, ज्योतिष, वैद्यक आदि विविध विषयों का निरूपण करनेवाली छोटी बड़ी सैंकड़ों हजारों ग्रन्थ-कृतियां जैन भंडारों में उपलब्ध हो रही हैं। खरतरगच्छीय विद्वानों की की हुई यह उपासना न केवल जैनधर्म की दृष्टि से ही महत्व वाली है, अपितु समुच्चय भारतीय संस्कृति के गौरव की दृष्टि से भी उतना ही महत्व रखती है।"

खरतरगच्छ द्वारा चैत्यवास का उन्मूलन संयम मार्ग की पुनः प्रतिष्ठा का ही परिणाम है। लेकिन पिछले दो सौ वर्षों में इस कार्य में कुछ शिथिलता आई है। कारण स्पष्ट है, हमने पार्थिव शरीर या रूढ़ आचारों का तो महत्व दिया पर उसके पीछे जो समाज कल्याण की भावना और साधना थी, वह नहीं रही। फिर उन युगपुरुषों ने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मंत्र, तंत्र, ज्योतिष, चिकित्सा आदि विद्याओं का उपयोग किया था, वह विशुद्ध समाजहित की भावना से किया था। कहीं अपने व्यक्तिगत प्रभाव बढ़ाने या स्वार्थ के लिए नहीं किया। परन्तु वह परम्परा आगे नहीं चली। उल्टे हम उन उत्तम, महापुरुषों की भक्ति अपने व्यक्तिगत भौतिक सुखों की प्राप्ति और दुःख-विमुक्ति के लिये करने लगे। इस कामनिक भक्ति ने हमें भिखारी या दीन बनाया, हमारे पुरुषार्थ और सुप्त आत्मिक शक्ति का विकास होने में बाधा पहुँचायी। फलस्वरूप हमारा तेज नष्ट हुआ और हम उन युगप्रधान आचार्यों की परम्परा निभा नहीं सके।

आज ऐसे महान प्रभावशाली आचार्य मणिधारी जिनचन्द्रसूरि की ८ वीं शताब्दी के अवसर पर हम सब खरतरगच्छ के साधु, साध्वी, श्रावक-श्राविकाएं गहराई से चिन्तन कर हमारे तेजस्वी और प्रभावशाली आचार्यों के गुण और कार्यों का अनुसरण कर, गच्छ को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कराने का प्रयत्न करें तभी हमारा जयन्ती मनाना सार्थक होगा। नहीं तो बड़े बड़े जुलूस, सभा, भाषण, साहित्य प्रकाशन, स्वामी-वत्सल आदि में लाखों का खर्च करके भी विशेष लाभ नहीं उठा पावेंगे। आशा यह करनी चाहिये कि हमारे बन्धु इस विषय में चिन्तन कर ऐसा मार्ग अपनावेंगे जिससे समाज, राष्ट्र और मानव कल्याण में खरतरगच्छ महत्त्वपूर्ण योगदान दे। महा प्रभावी पुरुषों की शताब्दियों या जयन्तियों के मनाने की परम्परा और हमारा उन्हें श्रद्धांजलि अर्पण करना तभी उपयोगी हो सकेगा।

हमें आशा ही नहीं पर पूर्ण विश्वास है कि खरतर-गच्छ संघ उस दिशा में अवश्य ही सही कदम उठावेगा और युग के अनुकुल समाज व संघ के हित के कार्य करेगा।

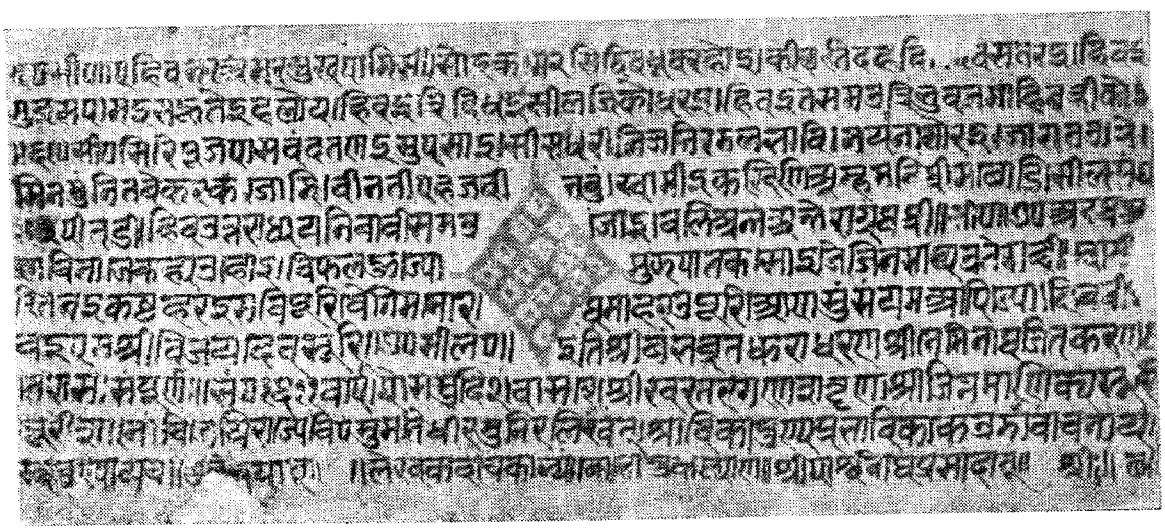

सं० १६११ में सुमतिधीर (अकबर प्र० श्रीजिनचन्द्रसूरि, आचार्य पद से पूर्व) मुनि की हस्तलिपि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org